International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 1; January 2018; Page No. 01-03

मोहनदास नैमिशराय जी की आत्मकथा ''अपने–अपने पिंजरे'' में सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन

डॉ. वन्दना चुटैल
एम.ए. (हिन्दी), एम.फिल्., पीएच.डी, अतिथि शिक्षक, पं. बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन' महाविद्यालय, शाजापुर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

आत्मकथा हिन्दी गद्य साहित्य की स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण विद्या है। हिन्दी गद्य के क्षेत्र में कथा, उपन्यास, नाटक, कहानी, समीक्षा आदि का जितना विकास हुआ है, उसकी अपेक्षा गद्य की विधाओं में रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, यात्रावृत्त और आत्मकथा पर कम ही साहित्य उपलब्ध होता है।

आत्मकथा अंग्रेजी के AUTO-BIOGRAPHY (ऑटोबायोग्राफी) का हिन्दी रूपान्तरण है। यहाँ Auto का अर्थ (आत्मा) और Biography (जीवनी) है। इस प्रकार से आत्मकथा का अर्थ हुआ–सम्बन्ध व्यक्ति द्वारा अपने जीवन की कहानी स्वयं लिखी जाना।

यह भी कह सकते हैं कि ''स्व'' के जीवन पर स्वरचित कथा ही आत्मकथा होती है।''[1]

इस प्रकार 'आत्मकथा' शब्द का अर्थ हुआ अपनी निजी चर्चा अथवा स्वकीय वार्ता। 'आत्मकथा' में लेखक का मुख्य उद्देश्य अपनी जीवनी कथा का वर्णन करना रहता है। जिसमें कथा का प्रमुख पात्र स्वयं लेखक होता है।

आत्मकथा में लेखक स्वयं को ही प्रस्तुत करता है। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने सुख–दुःख, गुण–दोष सब कुछ पाठक के सामने रखता है।

ऐसी ही 'आत्मकथा' 'अपने–अपने पिंजरे' जो कि मोहनदास नैमिशराय जी द्वारा हिन्दी में लिखी गई है। आत्मकथा दो भागों में विभाजित है। आत्मकथा का प्रथम भाग सन् 1995 में दूसरा भाग–2000 में प्रकाशित हुआ है। आत्मकथा में लेखक ने बचपन से लेकर युवा होने तक के सफर में जो अनगिनत घटनाएँ और दुर्घटनाएँ उनके साथ घटित हुईं, उन सभी का मार्मिक चित्रण उन्होंने आत्मकथा में प्रस्तुत किया है।

लेखक का जन्म मेरठ शहर में हुआ है। मेरठ शहर भारतीय शहरों में चर्चित शहर में आरम्भ हुई थी। इसी शहर ने बाबा साहब अम्बेडकर को भी देखा था, सुना भी था। इसी शहर ने बाबू जगजीवन राम, पी.बी. मौर्य, पं. जवाहरलाल नेहरू को भी देखा और सुना। शाहनवाज खाँ भी इसी शहर के थे, जो नेताजी सुभाष बोस की आजाद हिन्द फौज के जनरल थे। राष्ट्रपति के पारिवारिक हकीम भी इसी शहर के थे। इसी शहर में एक शायर बूम भी था जो मंच पर कविता–शायरी कम जिस्म के आर–पार की गालियाँ अधिक सुनाता था। जिसका चित्रण आत्मकथा में नैमिशराय जी ने प्रस्तुत किया है, देखिये–''घासवालियों के जीवन की त्रासदी को लेकर 'बूम' ने चमारीनाम भी लिखा था। चमारीनाम लिखा जरूर था पर उनमें सहानुभूतिवश और हमदर्दी के बतौर नहीं लिखा नमक–मिर्च लगाकर बेचने के लिए।

''श्रोतागण उसकी कविता–चटखारे ले–लेकर सुनते थे। उसकी कविताओं में चमारों का उपहास होता था। दूसरे मजे लेते थे, स्वयं दलित कुढ़ते थे।''[2]

इसी प्रकार से मेरठ शहर में फिरंगी आए, मराठे व मुगल भी आए। लेकिन हर आक्रमणकारी ने शहर की जातियों को बिखेरा था। जाति के आधार पर ही बस्तियाँ बनाई गई थीं। हर आने वाले हमलावरों ने बस्ती के चप्पे–चप्पे पर जातिगत नामों के निशान छोड़े थे। ऐसे ही जातिगत भेदभावों को नैमिशराय जी ने आत्मकथा में भी चित्रित किया है देखिए–''कुछ बस्तियाँ, बाड़ों और पाड़ों के नाम से जानी गई–जत्तीवाड़ा, पौड़ीवाड़ा, जटवाड़ा, छीपीवाड़ा, खटीकवाड़ा, ठठेरवाड़ा, बनियावाड़ा आदि–आदि। गलियों पर भी कहीं–कहीं वैसी ही छाप रही। नील की गली, मेरे शहर के भीतर बने पुल तथा पुलियों पर भी जातियों की पहचान थी, लोदवालों के पुल, सैनी पुल, कसाईयों की पुलियाँ, धीवरों का पुल .....। इससे अलग बेगम पुल, भुमिया का पुल तथा खूनी पुल भी था। शहर में गेट, बुढ़ाना गेट और दरवाजे भी थे। चमार गेट, दिल्ली गेट, कम्बोह गेट और सराय भी, जैसे बनी सराय, हर जाति और हर वर्ग के लोग अपनी–अपनी पहचान में सिमटे हुए। शहर धड़कता था, पर अलग–अलग स्वर में। बस्तियाँ थिरकतीं, नाचती थीं। अलग–अलग बोलियों में उन सबसे मिलकर बना यह शहर।''[3]

ऐसी जातिवादी व्यवस्था में आत्मकथाकार का जन्म हुआ था। लेकिन जन्म के कुछ दिनों बाद ही माँ का भी देहान्त हो गया था। माँ के इस तरह से दुनियाँ छोड़कर चले जाने की इस वेदना को याद करते हुए लेखक लिखते हैं–''माँ की मृत्यु का अहसास मुझे उस समय कहाँ था भला? होता भी कैसे? जमीन पर घिसटने वाला शिशु था, तब मैं पीछे रह गया था, ठूँठ–सा बाप, बिना टहनी–पत्तों का ऐसा दरख्त जिसके सीने में कोपलें नहीं खिलतीं, यूँ मेरे भाई भी थे और बहिनें भी पर प्यार से अधिक कहीं उसमें सहानुभूति थी। बस्ती में कुछ औरतें मुझे बिन माँ का बच्चा कहकर पुकारती–दुलारती थी।''[4]

यहाँ पर आत्मकथाकार ने अपनी माँ के प्रति और माँ के बिना जो बचपन रहा है उसके प्रति एक दुःखद पीड़ा को व्यक्त किया है।

आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में लेखक ने 'मेरठ' शहर की स्थिति के बारे में लिखा है। यह शहर दो भागों में बँटा हुआ था। आधा छावनी, आधा शहर छावनी में ठण्डी सड़क। शहर में साइकिलें ज्यादातर थीं। स्कूटर और मोटर–कार बहुत कम थे। लोग ज्यादातर पैदल ही अधिक चलते थे। शहर में कुछ रिक्शे, ताँगे भी थे। मन्दिर–मस्जिद बिना गिनतें के। शहरों में मुसलमानों की संख्या ज्यादा थी। नैमिशराय जी ने जिस भौगोलिक वातावरण में अपना बचपन बिताया उसका चित्रण हमें यहाँ पर देखने को मिलता है–''शहर में वैसी नजाकत–नफासत न थी। हाँ कस्बाई रौनक अवश्य थी, पर मुझे इस शहर में कभी कुछ विशेष न लगा। शहर के भीतर वैसी गड़ढ़ों वाली सड़कें थीं।

जगह–जगह कूड़े के ऊँचे–ऊँचे पहाड़ सरीखे ढेर थे। उन पर तेनसिंह, हिलेरी की तरह एवरेस्ट विजय करने की सनक में सूअर अपनी–अपनी थूथनी से कूड़े के ढ़ेरों को बिखेरते हुए लौट आते। नजदीक ही गन्दे नाले में मक्खी, मच्छरों के साथ बीमारियाँ और

उसी परिवेश से घिरी मिठाई की दुकानें, जिन पर तेली की तरह चिक्कट कपड़ों में भिन–भिनाती मक्खियाँ उड़ाते थुलथुले बदन सम्भाले हलवाई। दुकानों के नीचे दूध के झूठे कुल्हड़ों पर लड़ते–झगड़ते पगलाए कुत्ते।''[5]

इससे तो यही स्पष्ट होता है कि समाज में व्यक्ति के जीवन में सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों की भूमिका तो होती ही है, लेकिन व्यक्ति के विकास और उसके स्वास्थ्य निर्माण में भौगोलिक परिस्थितियाँ भी अपना योगदान करती हैं।

समाज में दलितों की क्या स्थिति थी। उनके आस–पास का भौगोलिक वातावरण कैसा है, उसकी पहचान क्या है? ये सारी स्थितियाँ हमें आत्मकथा में लेखक ने दिखाने का प्रयास किया है–''शहर का भूगोल बदल रहा था। पर इतिहास वैसा ही था। संकरी गलियों में धँसे कच्चे मकानों पर संस्कृति की छाप थी। शहर में अनगिनत बस्तियाँ थीं, जिनमें सुबह जलेबी–कचौड़ी बनाई जाती। शाम को बालुसाई और इमरती। पर हमारी बस्तियाँ नंगी और सपाट होतीं, गन्धहीन पर अजीब सी दुर्गन्ध परिवेश में फैली होती। घर–घर में चमड़ा भरा होता, आँगन में चमड़े के गीले टुकड़े सूखने के लिए पड़े होते। ऐसी बस्तियों के आस–पास हवा चलती तो महसूस होता यही कहीं चमारवाड़ा है।''[6]

शहर में जातिवाद का ऐसा प्रभाव था कि समाज में कोई भी धर्म या जाति का व्यक्ति हो दलितों को अपमानित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता था। उनको प्रताड़ित एवं अपमानित करने वाली ऐसी ही स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण लेखक ने भी प्रस्तुत किया है–''हम लम्बे समय से अपमान सहते आए थे, पर गुनहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे, जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिये पर डाल दिया था। हमारे पास अंग्रेजों के द्वारा दिए गए तमगे, मेडल, पुरस्कार न थे। हमारे पास था सिर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव। मन और शरीर पर चोट पड़ती तो वे ही जख्म हरे हो जाते। सदियों से गर्दिशों में रहते–रहते हम अपने इतिहास से कट गए थे। अपनी संस्कृति भूल गए थे। हमारे हथियार बोथरे हो गए। पहले हम उजड़े फिर बस्तियाँ, बाद में संस्कृति।''[7]

भारतीय समाज व्यवस्था पर ब्राह्मणवाद की विचारधारा का भी गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। हमारे देश में किस तरह से मानव–समाज जातियों में बँधा हुआ था। एक जाति से दूसरी जाति से किस तरह नीचा माना जाता है। जाति की इस व्यवस्था को दलित समुदाय का वर्ग किस तरह से ढो रहा है, इसका जीता–जागता चित्रण नैमिशराय जी ने आत्मकथा में चित्रित किया है देखिए–''गाँव–गाँव था वहाँ शहर जैसा कुछ भी न था। न पक्की सड़कें, न पक्के मकान। छोटे–छोटे कच्चे घर थे, पर जातियों की पक्की रेखाओं में विभाजित थे। मैं बहुत जल्दी ही गाँव के भूगोल के साथ जातियों की बनावट को समझ गया था। माँ ने कई बार बतलाया था। उत्तर की ओर बामनों के घर थे, उनके पीछे गुज्जर, फिर उनका कुँआ, दूसरी तरफ कायस्थ उनके साथ ही बनियों के दो–चार घर।''[8]

ऐसा ही चित्रण हमको आत्मकथा में धार्मिक स्थलों पर भी देखने को मिलता है–''शहर की अन्य बस्तियों से भी हमारी जात के लोग आए थे। उन्हें ढूँढने में ज्यादा परेशानी नहीं हुई। गंगा के घाट पर हमारी जात के तम्बू–डेरे अलग लगे। एक छोटा चमारवाड़ा वहाँ भी उभर आया था। हम से अलग जाटों, बामनों, ठाकुरों के खेमे थे। मेले में आए हर यात्री को देर–सबेर पता चल ही जाता था कि उसकी जात के लोग किस दिशा में हैं? जातियों के इन खेमों में जैसे–जैसे लोग सिमट रहे थे, रेत पर तम्बू–डेरों की कतारों में भी बढ़ोत्तरी हो रही थी।''[9]

इससे तो यही स्पष्ट होता है कि हमारी भारतीय वर्ण–व्यवस्था जो है जिसमें चाहे गाँव हो या शहर, मठ हो या मन्दिर, कोई भी धार्मिक स्थल क्यों न हो हर जगह पर दलितों को उनकी जाति के कारण ही अपमानित होना पड़ा था।

समाज में दलितों की जो स्थिति थी उसके पीछे उनकी अज्ञानता, अन्धविश्वासी होना भी कुछ हद तक जिम्मेदार था। समाज में जब तक अन्धविश्वास, अज्ञानता, रुढ़ियाँ, धार्मिक अन्धविश्वास खत्म नहीं होना, तब तक एक स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव नहीं होगा। ऐसे ही अन्धविश्वास एवं अज्ञानता का चित्रण नैमिशराय जी ने भी किया है, देखिए–''पीर के पीर, खड़े हो माँ, चाची, बुआ कहतीं, देख पीर बादसाँ म्हारे बच्चे खैरसल्लाह'' वापस लौटने चाइयै।'' उनके स्वर में अधिकार, भाव होता था। बार–बार उनके आगे अपने–अपने सिर नवातीं सुख–दुःख के हर पल, हर क्षण में उन देवी–देवताओं को याद करना ही पड़ता था। हमारे देवी–देवता साझे थे। उनमें कुछ देवी–देवता हिन्दुओं के थे। कुछ मुसलमानों के तथा कुछ हमारे अपने।''[10]

समाज का ये वर्ग सदियों से आर्थिक अभाव की जिन्दगी तो बसर करता आया ही है लेकिन उसके साथ–साथ उसे हमेशा रोटी, कपड़ा और मकान की समस्याओं से भी हमेशा परेशान होना पड़ा। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए उसे हमेशा से ही संघर्ष करना पड़ा है। ऐसी ही गरीबी, लाचारी और बेबसी की मार से लेखक का परिवार भी अछूता नहीं था। देखिए–''हमारे घरों में नहाने की कोई जगह न थी। घर कच्चे थे और जमीन भी। जरा–सा पानी पेड़ की मिट्टी फूल उठती थी। ताई माँ पखाने की गली में नहाती थी। न नल था और न बिजली। पंखें, कूलर तो सपने में भी न देखे थे। नल से ढो–ढोकर पानी लाना पड़ता था। एक–एक बाल्टी पानी के लिए अजीब मारामारी होती थी। कभी–कभी तो पानी युद्ध छिड़ जाता था।''[11]

इस प्रसंग से तो यही स्पष्ट होता है कि गन्दी बस्ती और अभावों भरा जीवन का दलितों के साथ अटूट रिश्ता है। ऐसा ही एक और प्रसंग नैमिशराय जी ने आर्थिक अभाव के साथ–साथ पेट की आग बुझाने के संकट को भी बड़े ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया है–''शादी–ब्याह के दिनों में हमारे चेहरे खुशी से चमकने लगते थे। यह सोचकर कि भरपेट खाने को मिलेगा। हम उस दिन की कई–कई हफ्तों से प्रतीक्षा किया करते थे। मैं माँ से बार–बार पूछता था कि फलाने के घर पर ब्याह कब है, ढिमाके के यहाँ कब ..... ।''[12]

इससे तो यही स्पष्ट होता है कि समाज का दलित व्यक्ति किस तरह से आर्थिक रूप से तो पिछड़ा था ही लेकिन वह पेट की आग बुझाने की सुविधाओं से भी वंचित था। उपेक्षा, अपमान और अस्पृश्यता का शिकार ये वर्ग किस तरह से अपनी पेट की भूख मिटाने को विवश और लाचार दिखाई देता है।

आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' के माध्यम से लेखक ने जातिवाद के कारण समाज में दलितों की जो स्थिति रही है, उसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। जाति नामक इस दंश की पीड़ा से लेखक और उसके जाति के लोगों को कदम–कदम पर अपमानित होना पड़ा था।

लेकिन इन सभी परिस्थितियों से नैमिशराय जी संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं और समाज में अपनी एक नई पहचान बनाते हैं जो कि समाज के लोगों के लिए प्रेरणा का कार्य करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी का आत्मकथात्मक साहित्य (डॉ. हरिवंशराय बच्चन, विष्णु प्रभाकर, पाण्डेय बैचेन शर्मा, 'उग्र' राजेन्द्र यादव और

अमृता प्रीतम के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ. आनन्द सिन्दल
2. अपने–अपने पिंजरे (भाग–1), मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, 21–ए दरियागंज, नई दिल्ली–110002; प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या–10
3. वही, पृष्ठ संख्या–12
4. वही, पृष्ठ संख्या–13
5. वही, पृष्ठ संख्या–10
6. वही, पृष्ठ संख्या–12
7. वही, पृष्ठ संख्या–18
8. वही, पृष्ठ संख्या–26
9. वही, पृष्ठ संख्या–65
10. वही, पृष्ठ संख्या–19
11. वही, पृष्ठ संख्या–42
12. वही, पृष्ठ संख्या–106